तान्त्रिक-साधनाएँ : एक पर्यवेक्षण

□ डा. रुद्रदेव त्रिपाठी
[एम.ए., पी-एच.डी., साहित्य-सांख्ययोगदर्शनाचार्य]

भारतीय मानव के जन-जीवन को सुखी, समृद्ध तथा शान्तिमय बनाने के लिए पूर्व महर्षियों ने जिन उपायों का आख्यान किया है, उनमें "तान्त्रिक साधना" का स्थान भी प्रमुख है। यह साधना इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण की कामना से आविर्भूत होने के कारण युगों से परीक्षा की कसौटी पर खरी उतरती रही है। तपःपूत महर्षियों ने आत्मसाधना के द्वारा इसके सत्य को शास्त्रों के माध्यम से आज के मानव तक पहुँचाया है और अपने अपार श्रम से इसके वास्तविक तथ्य को पुरस्कृत करने का आर्ष पुरुषार्थ किया है।

श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को बोध देते हुए मानव की ईश्वर अथवा ईश्वरीय-सत्ता-सम्पन्न वस्तुओं के प्रति अभिरुचि के प्रमुख कारण बताते हुए कहा कि—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन !
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ! ॥७-१६॥

अर्थात् भरतवंशियों में श्रेष्ठ हे अर्जुन, (१) आर्त—संकट में पड़ा हुआ, (२) जिज्ञासु—यथार्थ ज्ञान का इच्छुक, (३) अर्थार्थी—सांसारिक सुखों का अभिलाषी, तथा (४) ज्ञानी—ऐसे चार प्रकार के लोग मेरा स्मरण करते हैं। यह कथन सभी के सम्बन्ध में लागू होता है। इन चार कारणों में अन्तिम कारण को छोड़कर शेष तीन तो ऐसे हैं कि इनसे कोई बचा हुआ नहीं है। कुछ केवल पीड़ित हैं, कुछ केवल जिज्ञासु हैं और कुछ केवल अर्थार्थी हैं; जबकि अधिकांश व्यक्ति तीनों कारणों से ग्रस्त हैं। ऐसे लोगों की आवश्यकताएँ कितनी अधिक होती हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। ये आवश्यकताएँ मूलतः कष्टों से छुटकारा पाने, ज्ञातव्य को जानकर जिज्ञासा को शान्त करने तथा सांसारिक सुखों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर बढ़ती रहती हैं। अतः आचार्यों ने इनकी पूर्ति के लिए भी अनेक मार्ग बताये हैं, जिनमें "तन्त्र-साधना" भी एक है। तन्त्र-शक्ति से प्राचीन आचार्यों ने अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की थीं और अन्य साधनाओं की अपेक्षा तन्त्र-साधना को सुलभ तथा सरल रूप में प्रस्तुत कर हमारे लिये वरदानरूप ही सिद्ध किया था। यही कारण है कि सुपठित, अल्पपठित और अपठित, शहरी तथा ग्रामीण, पुरुष एवं स्त्री सभी तन्त्र द्वारा अपनी-अपनी आवश्यकता की पूर्ति का प्रयत्न करते हैं और पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेते हैं। इसीलिए तन्त्र को सभी आवश्यकताओं का पूरक माना जाता है।

जब हम दुःखों से मुक्त होते हैं, तो हमारी आकांक्षाएँ कुलाचें भरने लगती हैं, इच्छाएँ सीमाएँ लाँघकर असीम बनती जाती हैं साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि इन सबकी पूर्ति में अधिक श्रम न उठाना पड़े। ठीक भी है, कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो घोर परिश्रम से साध्य क्रिया की अपेक्षा सरलता से साध्य क्रिया की ओर प्रवृत्त न हो? तन्त्र वस्तुतः एक ऐसी ही शक्ति है, जिसमें न अधिक कठिनाई है और न अधिक श्रम। थोड़ी-सी विधि और थोड़े से प्रयास से सिद्धि प्राप्त हो सकती है तो तन्त्र से ही।

अतः आवश्यकता और आकांक्षा की सिद्धि के लिए तन्त्र-शक्ति का सहारा ही एक सर्वसुलभ साधन है।

तन्त्र : शब्दार्थ और परिभाषा

'तन्त्र' शब्द के अर्थ बहुत विस्तृत हैं, उनमें से सिद्धान्त, शासन-प्रबन्ध, व्यवहार, नियम, वेद की एक शाखा, शिव-शक्ति आदि की पूजा और अभिचार आदि का विधान करने वाला शास्त्र, आगम, कर्मकाण्ड-पद्धति और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके उद्देश्यों का पूरक उपाय अथवा युक्ति प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध से महत्त्वपूर्ण है। वैसे यह शब्द "तन्" और "त्रै" इन दो धातुओं से बना है, अतः विस्तारपूर्वक तत्त्व को अपने अधीन करना, यह अर्थ व्याकरण की दृष्टि से स्पष्ट होता है, जबकि "तन्" पद से प्रकृति और परमात्मा तथा "त्रै" से स्वाधीन बनाने के भाव को ध्यान में रखकर "तन्त्र" का अर्थ—देवताओं की पूजा आदि उपकरणों से प्रकृति और परमेश्वर को अपने अनुकूल बनाना होता है तथा परमेश्वर की उपासना के लिए जो उपयोगी साधन हैं वे भी "तन्त्र" ही कहलाते हैं। इन्हीं सब अर्थों को ध्यान में रखकर शास्त्रों में तन्त्र की परिभाषा दी गयी है—

सर्वेऽर्था येन तन्यन्ते त्रायन्ते च भयाज्जनान्।
इति तन्त्रस्य तन्त्रत्वं तन्त्रज्ञाः परिचक्षते॥

अर्थात् जिसके द्वारा सभी मन्त्रार्थों—अनुष्ठानों—का विस्तारपूर्वक विचार ज्ञात हो तथा जिसके अनुसार कर्म करने पर लोगों की भय से रक्षा हो वही "तन्त्र" है, तन्त्रशास्त्र के मर्मज्ञों का यही कथन है।

तन्त्र का दूसरा नाम आगम है। अतः तन्त्र और आगम एक-दूसरे के पर्यायवाची हैं। वैसे आगम के बारे में यह प्रसिद्ध है कि—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो, गतं च गिरिजामुखे।
मतं च वासुदेवस्य, तत् आगम उच्यते॥

तात्पर्य यह है कि जो शिवजी के मुखों से आया और पार्वतीजी के मुख में पहुँचा तथा जिसे विष्णु जी ने अनुमोदित किया वही आगम है। इस प्रकार आगमों या तन्त्रों के प्रथम प्रवक्ता शिव हैं तथा उसमें सम्मति देने वाले विष्णु हैं जबकि पार्वतीजी उसका श्रवण कर जीवों पर कृपा करके उपदेश देने वाली हैं। अतः भोग और मोक्ष के उपायों को बताने वाला शास्त्र "**आगम**" अथवा "**तन्त्र**" कहलाता है, यह स्पष्ट है।

तन्त्र और जनसाधारण का भ्रम

तन्त्रों के बारे में अनेक भ्रम फैले हुए हैं। हम अशिक्षितों को छोड़ दें, तब भी शिक्षित-समाज तन्त्र की वास्तविक भावना से दूर केवल परम्परामूलक धारणाओं के आधार पर इस भ्रम से नहीं छूट पाया है कि 'तन्त्र का अर्थ, जादू-टोना है।' अधिकांश जन सोचते हैं कि जैसे सड़क पर खेल करने वाला बाजीगर कुछ समय के लिए अपने करतब दिखाकर लोगों को आश्चर्य में डाल देता है उसी प्रकार "तन्त्र" भी कुछ करतब दिखाने मात्र का शास्त्र होता होगा और जैसे बाजीगर की सिद्धि क्षणिक होती है वैसे ही तान्त्रिक सिद्धि भी क्षणिक होगी।

इसके अतिरिक्त तन्त्रों में उत्तरकाल में कुछ ऐसी बातें भी प्रविष्ट हो गयीं कि उनमें पंचमकार—मद्य, मांस, मीन (मछली), मुद्रा और मैथुन—का सेवन तथा शव-साधना, बलिदान आदि के निर्देश प्राप्त होते हैं। किन्तु खेद है कि इन बातों को तो लोगों ने देखा पर इसके साथ ही तन्त्रों की "गोपनीयता" की ओर उनका ध्यान नहीं गया। निश्चित ही गोपनीयता के इस रहस्य की पृष्ठभूमि में ये लाक्षणिक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इन सब निर्देशों का एक विशिष्ट आध्यात्मिक अर्थ है जिसे शास्त्रों से तथा गुरु-परम्परा से ही जाना जा सकता है। वाममार्ग या वामाचार का अर्थ भी इसी प्रकार संकेत से सम्बद्ध है। इसमें जो बात सामान्य समाज समझता है, वह कदापि नहीं है।

एक यह भी कारण इस शास्त्र के प्रति दुर्भाव रखने का है कि मध्यकाल में जब इस देश में बौद्धों के हीनयान पंथ का प्रचार बलशाली था तथा विदेशी आक्रमणों से त्रस्त जनता कुछ करने में अपने आपको अशक्त पाकर ऐसे मार्गों का अवलम्बन ले रही थी, तब हमारे सन्त कवियों ने स्वयं तन्त्र साधना के बल पर ही लोगों को 'भक्ति' की ओर प्रेरित किया—जो कि आत्मशान्ति और आत्मकल्याण का एक सुगम उपाय था। ऐसे समय में कुछ प्रासंगिक रूप में तन्त्रों की निन्दा भी हुई जो बाद में हीन दृष्टि का कारण बनी।

अस्तु, यह नितान्त सत्य है कि—"तन्त्रों की उदात्त भावना एवं विशुद्ध आचार पद्धति के वास्तविक ज्ञान के अभाव से ही लोगों में इस शास्त्र के प्रति घृणा उपजी है और कतिपय स्वार्थी लोग तुच्छ क्रियाओं-आडम्बरों के द्वारा जनसाधारण को तन्त्र के नाम पर जो ठग लेते हैं, वह भी इसमें हेतु हैं। अतः इस साहित्य का पूर्णज्ञान प्राप्त किये बिना घृणा करना भूल है।

वस्तुतः "तन्त्र" क्या है ?

जैसा कि हमने ऊपर तन्त्र के शब्दार्थ में दिखाया है कि "यह एक स्वतन्त्र शास्त्र है, जो पूजा और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार-पद्धति का परिचय देते हुए इच्छित तत्त्वों को अपने अधीन बनाने का मार्ग दिखाता है।" इस प्रकार यह "साधना-शास्त्र" है। इसमें साधना के अनेक प्रकार दिखाये गये हैं, जिनमें देवताओं के स्वरूप, गुण, कर्म आदि के चिन्तन की प्रक्रिया बतलाते हुए "पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम तथा स्तोत्र" इन पाँच अंगों वाली पूजा का विधान किया गया है। इन अंगों का कुछ विस्तार से परिचय इस प्रकार है—

(क) **पटल**—इसमें मुख्य रूप से जिस देवता का पटल होता है, उसका महत्त्व, इच्छित कार्य की शीघ्र सिद्धि के लिए जप, होम का सूचन तथा उसमें उपयोगी सामग्री आदि का निर्देश होता है। साथ ही यदि मन्त्र शापित है, तो उसका शापोद्धार भी दिखाया जाता है।

(ख) **पद्धति**—इसमें साधना के लिए शास्त्रीय विधि का क्रमशः निर्देश होता है, जिसमें—प्रातः स्नान से लेकर पूजा और जप-समाप्ति तक के मन्त्र तथा उनके विनियोग आदि का सांगोपांग वर्णन होता है। इस तरह नित्य-पूजा और नैमित्तिक-पूजा दोनों प्रकारों का प्रयोग-विधान तथा काम्य-कर्मों का संक्षिप्त सूचन इसमें सरलता से प्राप्त हो जाता है।

(ग) **कवच**—प्रत्येक देवता की उपासना में उनके नामों के द्वारा उनका अपने शरीर में निवास तथा रक्षा की प्रार्थना करते हुए जो न्यास किये जाते हैं, वे ही कवच रूप में वर्णित होते हैं। जब ये "कवच" न्यास और पाठ द्वारा सिद्ध हो जाते हैं, तो साधक किसी भी रोगी पर इनके द्वारा झाड़ने-फूंकने की क्रिया करता है और उससे रोग शान्त हो जाते हैं। कवच का पाठ जप के पश्चात् होता है। भूर्जपत्र पर कवच का लेखन, पानी का अभिमन्त्रण, तिलकधारण, वलय, ताबीज तथा अन्य धारण वस्तुओं को अभिमन्त्रित करने का कार्य भी इन्हीं से होता है।

(घ) **सहस्रनाम**—उपास्यदेव के हजार नामों का संकलन इन स्तोत्रों में रहता है। ये सहस्रनाम ही विविध प्रकार की पूजाओं में, स्वतन्त्र पाठ के रूप में तथा हवन-कर्म में प्रयुक्त होते हैं। ये नाम अति रहस्यपूर्ण देवताओं के गुण-कर्मों का आख्यान करने वाले, मन्त्रमय तथा सिद्धमन्त्र रूप होते हैं। अतः इनका भी स्वतन्त्र अनुष्ठान होता है।

(ङ) **स्तोत्र**—आराध्यदेव की स्तुति का संग्रह ही स्तोत्र कहलाता है। प्रधानरूप से स्तोत्रों में गुण-गान एवं प्रार्थनाएँ रहती हैं किन्तु कुछ सिद्ध-स्तोत्रों में मन्त्र-प्रयोग, स्वर्ण आदि बनाने की विधि, यन्त्र बनाने का विधान, औषधि-प्रयोग आदि भी गुप्त संकेतों द्वारा बताये जाते हैं। तत्त्व, पंजर, उपनिषद् आदि भी इसी के भेद-प्रभेद हैं।

इन पाँच अंगों से पूर्ण शास्त्र 'तन्त्रशास्त्र' कहलाता है। कलियुग में तन्त्रशास्त्रों के अनुसार की जाने वाली साधना शीघ्र फलवती होती है। इसीलिए कहा गया है कि—

विना ह्यागममार्गेण नास्ति सिद्धिः कलौ प्रिये।

इसी प्रकार "योगिनी तन्त्र" में तो यहाँ तक कहा गया है कि—

निर्वीर्याः श्रौतजातीया विषहीनोरगा इव।
सत्यादौ सफला आसन् कलौ ते मृतका इव॥
पांचालिका यथा भित्तौ सर्वेन्द्रिय-समन्विताः।
अमूरशक्ताः कार्येषु तथान्ये मन्त्रराशयः॥
कलावन्योदितैर्मार्गैः सिद्धिमिच्छति यो नरः।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः॥
कलौ तन्त्रोदिता मन्त्राः सिद्धास्तूर्णफलप्रदाः।
शस्ताः कर्मसु सर्वेषु जप-यज्ञ-क्रियादिषु॥

वैदिक मन्त्र विषरहित सर्पों के समान निर्वीर्य हो गये हैं। वे सतयुग, त्रेता और द्वापर के सफल थे; किन्तु अब कलियुग में मृतक के समान हैं। जिस प्रकार दीवार के समान सर्वइन्द्रियों से युक्त पुतलियाँ अशक्त होती हैं, उसी प्रकार तन्त्र से अतिरिक्त मन्त्र-समुदाय अशक्त है। कलियुग में अन्य शास्त्रों द्वारा कथित मन्त्रों से जो सिद्धि चाहता है वह अपनी प्यास बुझाने के लिए गंगा के पास रहकर भी दुर्बुद्धिवश कुआँ खोदना चाहता है। कलियुग में तन्त्रों में कहे गये मन्त्र सिद्ध हैं तथा शीघ्र सिद्धि देने वाले तथा जप, यज्ञ और क्रिया आदि में भी प्रशस्त हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत्स्यपुराण में कहा गया है कि—

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्लादानामुदधिर्यथा।
नदीनां च यथा गंगा पर्वतानां हिमालयः॥
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्।
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै देवसम्मतम्॥

जैसे देवताओं में विष्णु, सरोवरों में समुद्र, नदियों में गंगा और पर्वतों में हिमालय श्रेष्ठ है, वैसे ही समस्त शास्त्रों में तन्त्र-शास्त्र सर्वश्रेष्ठ है। वह सर्वकामनाओं का देने वाला पुण्यमय और वेदसम्मत है।

"महानिर्वाणतन्त्र" में भी कहा गया है कि—

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा आगमोक्ताः कलौ शिवे।
नान्यमार्गैः क्रियासिद्धिः कदापि गृहमेधिनाम्॥

हे पार्वती! कलियुग में गृहस्थ केवल आगम-तन्त्र के अनुसार ही कार्य करेंगे। अन्य मार्गों से गृहस्थियों को कभी सिद्धि नहीं होगी।

यही कारण है कि उत्तरकाल में तन्त्रशास्त्र और उसके आधार पर होने वाले प्रयोगों पर श्रद्धापूर्वक विश्वास ही नहीं किया गया अपितु स्वयं प्रयत्न करके सुख-सुविधाएँ भी उपलब्ध की गयी है।

यह असत्य नहीं है कि जहाँ जल अधिक होता है वहाँ कीचड़ भी जम जाता है। इसी प्रकार युगों से चले आये तान्त्रिक कर्मों में कुछ सामयिक तथा अन्य देशीय क्रियाकलापों के प्रभाव से पंचमकारोपासना, मलिन प्रक्रियाएँ, हिंसक वत्ति आदि भी बहुधा समाविष्ट हो गयी। इन्द्रिय-लोलुप लोगों ने अपने क्षणिक स्वार्थ को अपनाकर इन बातों को अबोध व्यक्तियों में पर्याप्त विस्तार दिया। फलतः उनका प्रवेश स्थायी हो गया। फिर भी जो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं वे नितान्त शुद्ध उपासना और अध्यात्मतत्त्व पर ही आधारित हैं जिनका संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना भी इस सम्बन्ध में उपयोगी होगा।

"कुलार्णवतन्त्र" में "पंचमकार" के प्रयोग का निषेध करते हुए स्पष्ट कहा गया है कि—

मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धिं लभेत् वै।
मद्यपानरताः सर्वे सिद्धिं गच्छन्तु मानवाः॥
मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत्।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्यभाजो भवन्ति हि॥

यदि मद्यपान करने से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता हो, तो सभी शराबी सिद्ध बन जायेंगे और यदि मांसभक्षण मात्र से अच्छी गति होती तो सभी मांसभक्षी पुण्यात्मा क्यों नहीं बन जाते? आदि।

तन्त्रशास्त्र के पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम और स्तोत्र—इन पाँच अंगों में भी क्रमशः यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, योग और स्वरोदय रूप पंचामृत की अपेक्षा रहती है इसकी पूर्ति के लिए हमारे आचार्यों ने इन पर भी पूरा विचार किया है। यथा—

(१) **यन्त्र**—आज का युग भी यान्त्रिक युग कहा जाता है। मानव लोहे से लड़-भिड़कर भौतिक विज्ञान की वृद्धि में सतत जागरूक बना हुआ है। कुछ अंशों में वह अपनी कृतियों को देखकर मन में सन्तोष भी करता है पर अन्ततोगत्वा ये साधन विनाश की ओर ही ले जा रहे हैं—इस बात को वह अस्वीकृत नहीं करता।

हमारे यहाँ भी एक यान्त्रिक युग रहा है जिस काल में प्रत्येक उपासक प्राणिमात्र के दुःखविनाश के लिए देवी उपासना से सिद्ध मन्त्रों के द्वारा प्रयोग करता रहा। सही स्वरूप में उसने अपने पक्ष में इस स्थिति पर नियन्त्रण तो किया ही, साथ ही साथ आत्मोन्नति के चरम लक्ष्य से भी वह पीछे नहीं रहा। यन्त्रमयी देवता की दिव्य उपासना के द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक सभी समस्यायें उचित ढंग से हल कीं और विश्व के समक्ष एक नया विज्ञान उपस्थित किया।

(२) **मन्त्र**—"**नास्ति मन्त्रमनक्षरम्**" के आधार पर यह कहना सरल हो गया है कि मन्त्रों की व्यापकता कितनी विशाल है। वाणी के द्वारा संसार की समस्त प्रक्रियायें सरलता से चल रही हैं और अहर्निश वाणी के माध्यम से ही हमारे सभी कार्य सम्पन्न हो रहे हैं। किन्तु यह वाणी का विकास अथवा विलास इतना विशाल है कि इसका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सच्चा उपयोग न्यून मात्रा में ही होता रहा है। सम्भवतः इसी बात को ध्यान में रखकर "बिखरी हुई शक्ति का एकीकरण हो जाने पर उसकी क्रियाशील तेजस्विनी बन जाती है" इस सिद्ध भावना को साकार स्वरूप देते हुए यान्त्रिकों ने वाणी के संवरण को प्राथमिकता दी और बीजमन्त्रों के द्वारा ही समस्त कार्य सिद्ध होने की ओर संकेत किया। उचित निर्देशन पाकर लक्ष-लक्ष उपासकों ने एक दो नहीं, गाँव के गाँव और बड़े-बड़े नगरों तक को मन्त्र प्रभाव से विपज्जाल से छुड़ाया है, आपत्तियों के आवरण से प्रकाश में ला बिठाया है, जिसका साक्षी पूर्वकाल है।

(३) **तन्त्र**—क्रिया कुशलता के बिना अच्छी प्रतिभाएँ भी अन्ध, मूक और बधिर की कोटि में स्थिर रहकर विलुप्त हो जाती हैं। संयोजना शक्ति का लोहा मानने से कौन सिर हिला सकता है। उपर्युक्त दो धारायें भी इस सरस्वती के बिना शून्य सी रहती हैं। यही कारण है कि आचार्यप्रवरों ने इस पर विशेष बल दिया। उन दो धाराओं में इसकी प्रमुखता न रहने पर भी इसके सहयोग की पूर्ण अपेक्षा रहती है। और फिर विज्ञान तो इसमें कूट-कूटकर भरा हुआ है। इसमें भौतिक वस्तुओं का संकलन और उनकी उपादेयता पर पूरा लक्ष्य रहा है और इसके निमित्त भी कई ग्रन्थ समक्ष आये हैं।

(४) **योग**—इस 'त्रिवेणी' में अवगाहन करने की योग्यता प्राप्त करने के लिए "योग" की पूर्ण आवश्यकता है। योग के बिना किसी भी कार्य में सफलता पाने की अभिलाषा करना ख-पुष्प-संचय की तरह निराधार है। इस शास्त्र ने भी भारत में यथेच्छ प्रचार-प्रसार पाया है। इसकी महिमा से विश्व-परिचित है। आज भी इसके द्वारा सिद्धि-पथ पर समारूढ़ होते हुए कई महापुरुष देखे जाते हैं।

(५) **स्वर**—किसी कार्य का आरम्भ अनुकूल वातावरण में हो, तो वह "**अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति**" वाली उक्ति का ग्रास नहीं बनता। गतागत का विचार भी साधक के लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि योग। बाह्य साधनों से हम भूत, वर्तमान और भविष्य की उच्चावच परिस्थितियों का ज्ञान कर सकते हैं, किन्तु हम जिस देह के द्वारा कार्य करने जा रहे हैं उसकी त्रैकालिक स्थिति अनुकूल है या नहीं, इसका ज्ञान तो "स्वरोदय" से ही हो सकता है। इस विषय को लेकर कई ग्रन्थों का निर्माण हुआ है।

इस पंचामृत के पान कर लेने पर आज का अस्त-व्यस्त और त्रस्त मानव अवश्य ही अपनी त्रिविध तापनाओं से त्राण पाकर आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण कर सकता है, इसमें सन्देह को तनिक भी अवकाश नहीं। इन सब उदात्त संकल्पों की सर्वांगीण सिद्धि के लिए निम्नलिखित साधना की अपेक्षा है—

(१) विश्व के समस्त धर्मों में प्रचलित तान्त्रिकादि परम्पराओं का परिचय।

(२) विभिन्न तन्त्रादि शास्त्र एवं अन्य सहयोगी अनेक प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थों का एक अभिनव विशाल संग्रह।

(३) अप्राप्य एवं विलुप्तप्राय ग्रन्थों की प्राप्ति का प्रयत्न।

(४) ताड़पत्रीय, भोजपत्रीय, प्रस्तरलिखित, ताम्रपत्र और वस्त्र पर अथवा बाँस पर लिखे हुए जीर्ण-शीर्ण ग्रन्थ अथवा एतत् सम्बन्धी साहित्य की प्रतिलिपि-चित्र (फोटो), छायाचित्र (फिल्म) एवं अन्य साधनों द्वारा संरक्षण।

(५) प्रत्येक धर्मगुरुओं से सम्पर्क साधकर देवालय, उपासनागृह आदि स्थानों पर स्थापित सिद्ध-यन्त्रों के एक विशाल संग्रह (म्यूजियम के रूप में) की स्थापना।

(६) प्रयोग में आने वाली आलेख्य-सामग्री, उपासना-सामग्री एवं धातु, द्रव्य, ग्रन्थ आदि का प्रदर्शन के लिए संग्रह।

(७) उपासना के उपयोग में आने वाले यौगिक एवं अन्य चित्रों का निर्माण और मुद्राओं के प्रदर्शन के लिए स्वरूप-दर्शन।

(८) कोष-निर्माण, पत्र-प्रकाशन, अनुसन्धान से प्राप्त ग्रन्थ का सुलभ प्रकाशन, विचार-गोष्ठी आयोजन एवं प्रचार-प्रसार के लिए अन्य साधन।

(९) सुदूर राष्ट्रों के विद्वानों से सम्पर्क स्थापित कर उचित सहयोग की प्राप्ति।

(१०) भारतीय विद्वानों से सहयोग-प्राप्ति तथा मार्गदर्शन-प्राप्ति।

(११) इतिवृत्त, आलेखन, दुरूह ग्रन्थों पर टीका, उपटीका निर्माण तथा विविध भाषाओं में सरल सुबोध अनुवाद।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके साथ ही ग्रामीण और कुछ पुराने विचारकों के मानस में फैली हुई भूत-प्रेतादि बाधा सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओं की सच्चाई सामने रखने के लिए प्रचलित अन्यान्य लौकिक परम्पराओं का अनुसन्धान एवं संग्रह तथा मैस्मेरिज्म, हिप्नोटिज्म आदि का सच्चा रूप-निदर्शन ।

जैनधर्म और तान्त्रिक साधनाएँ

जैनधर्म में शक्ति का मूल केन्द्र आत्मा को माना गया है। आत्मा की अनन्त शक्तियों के साक्षात् जागृत प्रतिनिधि तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर की उपासना में ही सम्पूर्ण भौतिक एवं दैविक शक्तियाँ संलग्न हैं। अतएव जैनाचार्यों द्वारा यन्त्र-मन्त्र-साधना के लिए विहित किया गया सम्पूर्ण यन्त्र-मन्त्रविधान, "**नमो अरिहंताणं**" इस नमस्कार-मन्त्र पर निर्भर है। यहाँ अरिहंत का सामान्य अर्थ है अरि अर्थात् शत्रु और हन्ता अर्थात् हनन करने वाला। पूरे मन्त्र वाक्य का अर्थ हुआ "शत्रुओं को समाप्त कर देने वाले परम योद्धा को नमस्कार हो"। इसका अर्थ यह हुआ कि जिसने राग-द्वेष दोनों आवरणकारक दोषों को नष्ट कर, कर्मफल का विध्वंस कर, अनन्त शक्तियों को उपलब्ध कर लिया है, उस अरिहंत को नमस्कार हो।

परमात्मा और अरिहंत में अन्तर केवल इतना ही है कि अरिहंत सशरीरी परमात्मा है और सिद्ध परमात्मा अशरीरी हैं। सशरीर होते हुए भी अरिहंत साक्षात् परमात्म-स्वरूप हैं क्योंकि अरिहंत में अनन्तज्ञान-शक्ति, अनन्त-दर्शन-शक्ति, अनन्तचारित्र-शक्ति एवं अनन्तबलवीर्य, पराक्रम-शक्ति का पूर्ण जागरण एवं पूर्ण विकास हो जाता है। सामान्य साधक को तो अरिहंत की उपासना मात्र से ही ऋद्धि, सिद्धि विषयक कामना की उपलब्धि तथा भौतिक एवं आध्यात्मिक आकांक्षा की प्राप्ति हो जाती है। ऐसा हम कह सकते हैं कि यन्त्र-मन्त्र उसी परमाराध्य अरिहंत भगवान् के स्वरूपों की पूजामात्र है। जैनधर्म के परम्परागत आचार्यों ने यन्त्र-मन्त्र के क्षेत्र में अपनी महान् उपलब्धियों के बूते पर इस उपासना प्रणाली में इतने शक्तिशाली एवं ऊर्जासम्पन्न बीजों को अन्तर्निहित कर दिया है कि जैन यन्त्र-मन्त्रों की साधना के लिए विहित विधि-विधान के मार्ग से साधना करने वाले व्यक्ति को अल्प-समय में ही अपनी साधना की फल-प्राप्ति हो जाती है।

जैन श्रमणों की शक्ति-पूजा

जैनधर्म में भी शक्ति-पूजा तथा शाक्ततन्त्रों को समुचित स्थान प्राप्त हुआ है। आचार्य हेमचन्द्ररचित "योगशास्त्र" के सातवें और आठवें प्रकाश में धर्मध्यान के अन्तर्गत "पदस्थ" नामक ध्यान में अन्य धर्मानुयायियों के समान ही षट्चक्रवेध की पद्धति के अनुसार वर्णमयी देवता का चिन्तन किया गया है। वहाँ मातृकाध्यान का वर्णन बहुत ही रोचक है[1] तथा अनेक मन्त्रों की परम्परा से शक्तियुक्त आत्मस्वरूप की भावनाओं का विधान दृष्टिगत होता है। जैनमन्त्रों में प्रणव (ॐ), माया (ह्रीं), कामनाबीज (क्लीं) आदि बीजाक्षरों की शक्ति जैसी अन्यत्र वर्णित है वैसी ही बतलायी गयी है। केवल प्रधान देवता के रूप में "**अरिहंत**" की मान्यता है। इसमें पंचनमस्कार-महामन्त्र के पाँचों पद लिये गये हैं, तथा श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के अनुसार तो प्रत्येक तीर्थंकर की शासन-देवियाँ चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, कालिका, वैरोट्या आदि मानी गयी हैं। धरणेन्द्र-पद्मावती की उपासना तो वस्तुतः शाक्त सम्प्रदाया-नुकूल ही है। सनातनी उपासकों में जो "श्रीविद्याराधना" प्रसिद्ध है और बौद्ध-सम्प्रदाय में जो महत्त्व तारादेवी को प्राप्त है, ठीक वैसी ही मान्यता पद्मावती देवी की जैनों में है। कुछ विचारकों का कथन है कि श्री देवी की तारा और पद्मावती उपदेवियाँ हैं। जैन सरस्वती के सोलह विद्याव्यूह मानते हैं जो रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि जैनधर्मानुयायी शक्ति-पूजा में भी विश्वास करते हैं और वे एक प्रकार से शाक्त माने जा सकते हैं। यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि जैनों में हिन्दुओं के वामाचार अथवा बौद्धों के हीनयान जैसा कोई मार्ग नहीं है।

मन्त्रोपासना में गुरु और दीक्षा

जब कोई उपासक किसी भी देवी-देवता की उपासना में प्रवृत्त होता है तो उसे गुरु की आवश्यकता होती है और वे गुरु अपने आचार के अनुरूप दीक्षित करते हैं, तभी आराधक की साधना फलवती होती है और यह उचित ही है। आद्य शंकराचार्य ने कहा है—**मुनिर्न व्यामोहं भजति गुरुदीक्षाक्षततमाः**"—गुरु-दीक्षा से जिसका अज्ञान नष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो चुका है ऐसा मुनि मोह को प्राप्त नहीं होता। जैनाचार्यों को भी यह बात सर्वथा अभीष्ट है, इसलिए वहाँ पंच-नमस्कार-मन्त्र में आचार्य, उपाध्याय और साधु को महत्व दिया गया है। आजकल भले ही मुद्रित पुस्तकें पढ़कर प्रस्तुत शास्त्रों के ज्ञाता बन जायँ, किन्तु गुरुगम्य सम्प्रदायक्रम का ज्ञान न होने पर सफलता नहीं मिल सकती तथा दुराग्रही साधकों को कभी-कभी ऐसा फल भी मिल जाता है कि वे जीवन भर कष्टानुभव के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कर पाते। मानव भूलों का पात्र है, जबकि साधनामार्ग असिधारा-तुल्य दुरूह है। अतः दीक्षा लेकर ही आगे बढ़ना चाहिए। दीक्षा एक प्रकार से गुरु द्वारा प्रदत्त अनुग्रह शक्ति है। आचार्य अभिनवगुप्त "तन्त्रालोक" नामक ग्रन्थ में दीक्षा का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ बताते हुए कहते हैं कि—

"दीक्षा द्वारा ज्ञान की वास्तविकता दी जाती है और पाशविक बन्धन काट दिये जाते हैं अर्थात् दान और क्षपण-क्षय के आद्याक्षरों से दीक्षा शब्द का निर्माण हुआ है।[२] इसी तरह अन्य तन्त्रग्रन्थों में भी दीक्षा के माहात्म्य का वर्णन उपलब्ध होता है। अतः दीक्षित होकर ही साधनामार्ग में प्रवेश करना श्रेयस्कर है।[३]

तान्त्रिक प्रयोग तथा उनका उपयोग

कामिक—आगम में तन्त्र की व्याख्या—"विपुल अर्थों का विस्तार तन्त्र-मन्त्र द्वारा किया जाता है तथा साधकों का त्राण किया जाता है अतः उसे तन्त्र कहते हैं" ऐसी की गई है। यद्यपि शास्त्रों में तन्त्र के अर्थ शास्त्र, अनुष्ठान, विज्ञान, दर्शन, आचार-पद्धति, सांख्य, न्याय, धर्मशास्त्र, स्मृति आदि किये गये हैं और जैनधर्म में योग को ही तन्त्र कहा गया है, तथापि यहाँ यन्त्रमन्त्रादिसमन्वित एक विशिष्ट साधना-मार्ग का नाम तन्त्र माना जाता है।

महान् तन्त्रज्ञ नागार्जुन ने अपनी माता नागमती की कृपा से अर्बुदाचल (आबू पर्वत) पर औषधि विज्ञान को पहिचाना। बाद में पादलिप्त सूरि के पास जाकर आकाशगामिनी विद्या का अध्ययन किया। तब से ही अपने द्वारा संगृहीत सिद्ध-प्रयोगों की पुस्तिका को लिखकर, कोई अन्य व्यक्ति इस संग्रह को चुरा न ले इस धारणा से अपनी काँख में ही उसे रखने लगा, जिसे उत्तर-काल में "कक्षपुटी" नाम से सम्बोधित किया गया। इस प्रकार कुछ जैनाचार्यों ने भी तन्त्र-साधना की।

जांगुलिमन्त्र, औषधिमन्त्र, सर्प और बिच्छू के विषापहार मन्त्र, वशीकरण औषधियाँ, श्वेतार्क, श्वेतगुंजा, अपराजिता, मूली, श्वेतपुष्पी, शंखपुष्पी आदि वृक्षों के मूल तथा अपराजिता, रुदन्ती, मयूरशिखी, सहदेवी, सियारसिंगी, मार्जारी, सर्षप आदि का प्रयोग, रविपुष्य, होली, दिवाली, नवरात्रि आदि दिनों में लाकर किया जाता है। इनके द्वारा सुखप्रसव, गर्भबाधा, मृतवत्सात्व, काकवन्ध्यादि दोष दूर किये जाते हैं। साथ ही ज्वर—एकाहिक, द्वयहिक, त्रिदिवसीय, चतुर्दिनात्मक भी उपर्युक्त औषध-मूलिकाओं के बाँधने से दूर हो जाते हैं। पीलिया, गोला, नाभिस्खलन आदि के लिए भी वैद्यक एवं ग्रामीण प्रक्रिया से उपयोग किया जाता है।

एकाक्षि-नारियल, दक्षिणावर्त शंख[४], एक नेत्र वाला रुद्राक्ष, दक्षिण शुण्डावाले गणपति, श्वेतार्क के गणपति जैसी वस्तुओं की सिद्धि के लिए निर्दिष्ट कल्प-विधान का निर्माण भी हमें लौकिक अभिरुचि के अनुरूप तान्त्रिक प्रयोगों की विपुलता से परिचित करवाता है। हम देखते हैं कि भारतवर्ष में जादूगरी, यक्षिणीसाधन, प्रेतसिद्धि, श्मशान-साधन, वेताल-सिद्धि, परकाय-प्रवेश, मृत व्यक्ति दर्शन, इन्द्रजाल-प्रदर्शन, हिप्नोटिज्म, मेस्मेरिज्म, प्लांचेस्टर आदि आश्चर्यपूर्ण वस्तुओं का भी तत्र-तत्र प्रयोग मिलता ही है, जिनकी गणना भी तन्त्र में ही की जाती है।

उपसंहार

इस प्रकार सभी सम्प्रदायों में प्रचलित तान्त्रिक साधनाओं के सामूहिक पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि साधना के विभिन्न मार्गों में यह प्रमुख मार्ग है। इसके आश्रय से समुचित विधि का पालन होता है, आत्मबल की प्राप्ति होती है। खण्डित अंगों से की जाने वाली साधना सफल नहीं होती। साधक का आशय उदार होना चाहिए। बुरी भावना से की जाने वाली साधना साधक का अपकार भी करती है। निन्द्यकर्मों से तान्त्रिक साधना नहीं करनी चाहिए। शास्त्र के प्रामाण्य और गुरु में विश्वास ही साधना के सच्चे साधन हैं आदि।

अतः हमारी अपेक्षा है कि प्रत्येक साधक **'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'** गीता के इस वाक्य को दृष्टि में रखकर तान्त्रिक साधना करे। अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ और सन्दर्भ स्थल

१ तुलना कीजिए—
क्षीराम्भोधेर्विनिर्यान्तीं प्लावयन्तीं सुधाम्बुभिः।
भाले शशिकलां ध्यायेत्, सिद्धिसोपानपद्धतिम् ॥ इत्यादि (हेमचन्द्राचार्य)

२ दीयते ज्ञानसद्भावः, क्षीयते पशुबन्धनम्।
दानक्षपणसंयुक्ता, दीक्षा तेनेह कीर्तिता ॥

३ दीक्षा के सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए देखिए म. म. श्री गोपीनाथजी कविराज का लेख "दीक्षा-रहस्य", कल्याण, भाग १५, संख्या ४।

४ देखिए '**तन्त्रशक्ति**' लेखक डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी, रंजन प्रकाशन, दिल्ली।

★★★

कपाल कुहरे जिह्वा, प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥
न रोगो मरणं तस्य, न निद्रा न क्षुधा तृषा।
न च मूर्च्छा भवेत्तस्य, मुद्रां यो वेत्ति खेचरीम् ॥
—गोरक्षाशतक ६६-६७

जीभ को उलटकर कपाल कुहर-तालु में लगाना और दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच में स्थापित करना खेचरीमुद्रा होती है। जो खेचरीमुद्रा को जानता है, वह न बीमार होता, न मरता, न सोता, न उसे भूख-प्यास लगती और न ही मूर्च्छा उत्पन्न होती है।

(*Continued from Page 99*)

pioneers, thus advancing medical science one step further, when it is really this ancient science of Yoga that is responsible for such 'advancement'.

Westerners are very enthusiastic, courageous, sincere and hard-working. They are always awaiting with humility guidance from the East. I think that their scientific and technical knowledge, if coupled with our qualities of spiritual understanding and maturity, such as are embodied in Yoga, could perhaps, working hand in hand together, bring homosapiens—human beings—once again to the *Vishva-shanti-Dharma*, the religion meant for universal peace, which was founded by our ancient masters.

The people of the West are now discovering the light of Yoga. I hope that it will not one day be they who bring Yoga back to our country. The East is the origin of Yoga, and I pray that it will always remain that origin and will continue to preserve this great Art.

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org